नदी–निषाद के सापेक्ष समाज और इतिहास–लेखन

रुचि श्री
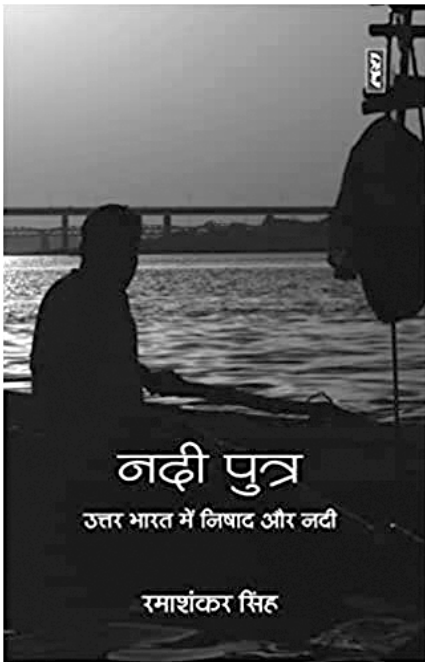
नदी-पुत्र : उत्तर भारत में निषाद और नदी (2022)
रमाशंकर सिंह
सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली.
पृष्ठ : 264.
मूल्य ₹ 250.

विगत सालों में आई कुछ किताबें ना केवल पर्यावरण, साहित्य और राजनीति जैसे विषयों के दायरे को क़रीब लाती हैं बल्कि मनुष्य और प्रकृति के अन्तर्संबंधओं के बारे में नए सिरे से सोचने का न्योता भी देती हैं। मसलन भारतीय मूल के विद्वानों में दीपेश चक्रवर्ती की किताब द *क्लाइमेट ऑफ़ हिस्ट्री इन अ प्लेनेटरी* ऐज एवं अमिताव घोष *की द ग्रेट डिरेंज्मेंट* एवं *नटमेग्स कर्स* जैसी किताबें उल्लेखनीय हैं। ये किताबें अंग्रेज़ी में हैं और अंतरविषयी ज्ञान के महत्त्व पर बल देती हैं। यह ग़ौरतलब है कि ग्लोबल साउथ या दक्षिणी गोलार्द्ध के 'ज्ञान की राजनीति'[1] के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा में इस तरह के साहित्य का नितांत अभाव है। ऐसे में, पर्यावरण और हाशिए के समाज के प्रति एक समुचित दृष्टिकोण बनाने के नज़रिए से समीक्षा के लिए प्रस्तुत पुस्तक बेहद महत्त्वपूर्ण है।

रमाशंकर सिंह द्वारा रचित *नदी-पुत्र*

[1] हाल में मणीन्द्र नाथ ठाकुर (2022) की इसी शीर्षक से आई एक किताब जिसका उप-शीर्षक समाज अध्ययन और भारतीय चिंतन है, इस बिंदु को विस्तार से समझने के लिए पढ़ी जा सकती है.

यह किताब पूर्व औपनिवेशिक काल में नदी-निषाद के संबंध से शुरू होकर हाल के समय में उत्तर प्रदेश की राजनीति में निषादों की बढ़ती हिस्सेदारी का विश्लेषण करती है। मनुष्य एवं प्रकृति के बीच संबंध के बदलते पैमाने और ख़ास तौर पर पिछले एक दशक से 'एंथ्रोपोसीन[2] पर विचार व बहस का दुनिया भर में तेज होना किताब के केंद्र में है। पहले अध्याय में इस विषय पर विस्तार से चर्चा के क्रम में यह स्पष्ट किया जाता है कि किस तरह उत्पादन के साधन के तौर पर जहाँ भूमि को अत्यधिक प्रमुखता दी गई वहीं नदी को इस दायरे से बिल्कुल अलग रखा गया (पृ. 25)। समाज और जाति की संरचना में भी नदी को एक कारक के रूप में वैचारिकी व शोध में लगभग नकारात्मक स्थान मिला है। इस अध्याय में नदियों और निषादों के सामाजिक-सांस्कृतिक सहजीवन को उपलब्ध साहित्य के माध्यम से बताया गया है। इस क्रम में लेखक ने किताब की विषय-वस्तु, प्रारूप और प्रासंगिकता का भी रेखांकन किया है। उन्होंने धर्म-ग्रंथों, साहित्य, इतिहास, राजनीति के हवाले विमर्श का एक वृहद् ख़ाका तैयार किया है। इसमें अतीत और वर्तमान में लगातार अनुक्रिया[3] हो रहे होने पर विशेष बल दिया गया है।

दूसरे अध्याय में भारत में जाति व्यवस्था के विकास और आरम्भिक भारत में शूद्रों की स्थिति पर विस्तृत चर्चा है। लेखक ने *: उत्तर भारत में निषाद और नदी* उनके एक दशक से भी ज्यादा समय तक किए गए शोध का परिणाम है। किताब का एक सशक्त पहलू है – अभिलेखागार में उद्धृत निषाद समाज से लेकर हाशिए पर रह रहे निषाद समाज को एक साथ पाठकों के समक्ष रखने की कोशिश। उन्होंने अपने लेखन में उत्तर प्रदेश राज्य अभिलेखागार, लखनऊ के साथ वाराणसी और प्रयागराज के क्षेत्रीय अभिलेखागारों से मदद ली। साथ ही उत्तर भारत के विभिन्न निषाद बहुल क्षेत्रों में ख़ासकर कानपुर, चंदौली और प्रयागराज जैसे शहरों में निषादों से हुई लंबी बातचीत से उनके जीवन के प्राथमिक अनुभव को समझने में लेखक को मदद मिली। किताब की शुरुआत में आभार एवं प्राक्कथन के हिस्से में शोध की पृष्ठभूमि एवं लक्ष्य स्पष्ट होता है जिसमें गंगा नदी के इर्द-गिर्द निषादों का जीवन एवं इतिहास में उनकी अनुपस्थिति का रेखांकन किया गया है। ऐसे में लेखक ना केवल इस विषय व लेखन की अनिवार्यता स्पष्ट करते हैं बल्कि शोधों के सामाजिक मूल्य का महत्त्व भी बताते हैं। किताब में कुल सात अध्याय हैं और उनका नामकरण अध्याय एक, दो की तरह करने की बजाय स्वतंत्र लेखों के तौर पर किया गया है। हालाँकि, उन अध्यायों में कालखंड के आधार पर एक रैखिक क्रम ज़रूर स्पष्ट होता है।

[2] एंथ्रोपोसीन शब्द का इस्तेमाल अस्सी के दशक में अमेरिकी वैज्ञानिक इयुजिन स्ट्रोमर द्वारा अनौपचारिक रूप से किया गया पर 1999 में पॉल क्रुट्जन (जिन्होंने ओज़ोन परत की खोज की) के साथ उनके द्वारा लिखे लेख से इस अवधारणा को प्रसिद्धि मिली. इस लेख ने यह वकालत की कि मानव कार्यों का पृथ्वी पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ रहा है; इसलिए इस युग को हॉलोसीन कहने की बजाय एंथ्रोपोसीन कहा जाए. देखें जे. सुशील (2022).

[3] अपनी इस बात को रखने के लिए लेखक मार्क ब्लॉख नामक इतिहासकार के फ्रेमवर्क का प्रयोग करते हैं। इतिहास, लोगों और समय पर बात करते हुए ब्लॉख (1954) ने कहा है कि जिस प्रकार अतीत से वर्तमान को समझा जा सकता है, इसी तरह वर्तमान से भी अतीत को समझने की कोशिश की जा सकती है.

ऋग्वैदिक समाज एवं उत्तर वैदिक समाज में अस्पृश्यता व बहिष्करण से लेकर बौद्ध धर्म का प्रभाव, मौर्यकाल में समाज के मुक़ाबले राज्य के मजबूत होने की प्रक्रिया, शहरीकरण के बढ़ते प्रभाव, गुप्तकाल में जाति व्यवस्था के विरोधाभास, आदि को सिलसिलेवार ढंग से दर्शाया गया है। तीसरा अध्याय पूर्व उत्तर औपनिवेशिक भारतीय समाज में निषादों की स्थिति का परिचायक है तो चौथा अध्याय नदी-निषाद के नज़रिए से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारत की कहानी है। पाँचवाँ अध्याय पर्यावरण, आजीविका और राजनीति के अंतर्द्वंद्वों को उजागर करता है। इस अध्याय में व्यक्ति-समुदाय और राज्य-समाज के संदर्भ में बनते-बिगड़ते समीकरणों की पड़ताल की गई है। छठा अध्याय गंगा के संदर्भ में लोक, शास्त्र एवं स्मृति के आलोक में समाज और इतिहास के जुड़ाव के साथ ही समकालीन राजनीति एवं पर्यावरण की भी कहानी है। समुदाय, संघर्ष और राजनीति' शीर्षक से लिखा गया अंतिम अध्याय प्रदूषण की सामाजिकी और पर्यावरण शरणार्थी जैसे मुद्दों की ओर ध्यान आकृष्ट करता है।

इतिहास निर्माण में नदी की भूमिका

इतिहास लेखन के क्रम में नदी को उसकी भौगोलिक एवं भौमिक संरचना तथा परिवहन में उसकी भूमिका से परे सांस्कृतिक इकाई के रूप में स्थापित करने का प्रयास रहा है (पृ. 27)। नदी अध्ययन में दो तरीक़े प्रचलित हुए – एक जल निकाय के रूप में और दूसरा कर्मकांडीय अध्ययन। लेखक कहते हैं कि नदी का एक स्वतंत्र स्पेस या दायरे के रूप में अध्ययन नहीं हुआ है। वे आगे स्पष्ट करते हैं कि इस तरह के अध्ययन को कैसे सुनिश्चित किया जाए। मार्क ब्लॉख के शब्दों में, 'अच्छा इतिहासकार किसी परिकथा का दैत्य है, वह जानता है कि उसके सवाल का जवाब वहीं है, जहाँ उसे मनुष्य के देह की गंध मिलती है' (पृ. 30)। उनके हवाले से लेखक अपने शोध का संदर्भ बताते हैं, 'मेरे लिए वह गंध नदियों के किनारे बसे निषाद समुदाय से संबंध रखती है... इस किताब में उस गंध को गंगा और यमुना नदियों के किनारे की गई एथ्नोग्राफ़ी में पकड़ने की कोशिश की गई है' (पृ. 31)। यह किताब गंगा नदी के परिप्रेक्ष्य में उसके किनारे रह रहे समुदायों की स्मृतियों, सांस्कृतिक एवं आर्थिक संरचनाओं को समझने के महत्त्व पर बल देने की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

किताब सबसे पहले पूर्वपक्ष रेखांकित करता है। भारत में एक रूपक के तौर पर गंगा ना सिर्फ़ एक नदी बल्कि देवी के रूप में एक लंबे समय से जनमानस में स्थापित है। नदियों के किनारे तीर्थ स्थलों के होने से लेकर मूर्तिकला, चित्रकला, साहित्य और संगीत में गंगा की उपस्थिति दर्ज है। गुप्त युग में मंदिरों के प्रवेशद्वार पर गंगा और यमुना की मूर्तियों को लगाया जाता था। गंगा की मकर वाहिनी मूर्तियों तथा यमुना की कच्छप वाहिनी मूर्तियाँ मंदिरों की दीवारों पर देखने को मिलती हैं। भारत के विभिन्न भागों में गंगा नदी के अवतरण की भिन्न-भिन्न कथाएँ प्रचलित हैं। विशेषकर महाभारत एवं रामायण में कई जगह गंगा का वर्णन है। इसी तरह संस्कृत एवं हिंदी साहित्य में भी बहुधा गंगा के भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग होने के

साक्ष्य स्पष्ट हैं। किताब में संदर्भ बहुविषयक तथा समय के लंबे कालखंड से होने से भारतीय समाज व राजनीति का ऐतिहासिक क्रम स्पष्ट होता है। *मनुस्मृति*, *महाभारत*, *रामायण* से लेकर बौद्ध ग्रंथों एवं मध्यकालीन भारत के ग्रंथों में नदी-निषाद पर हुए वर्णन का चित्रण किताब ने बखूबी किया है। लोक कथाओं, छंदों एवं प्रसंगों के ज़रिये समाज में जाति व्यवस्था के उद्भव और विकास तथा निषादों को अमानवीय, आक्रामक और अशुभ (पृ. 90) बताकर हाशिए पर रखने की प्रक्रिया का ताना-बाना पता चलता है।

आधुनिक भारतीय इतिहास एवं समाज में निषाद समुदाय

उपनिवेशवाद ने ना केवल भारतीय समाज एवं राजनीति बल्कि इसकी संस्कृति को भी मूल रूप से प्रभावित किया। इसका एक तत्व क़ानूनों में आए बदलाव और जनजीवन पर पड़ने वाले असर से जुड़ा है। औपनिवेशिक क़ानूनों में क़ब्ज़े की प्रवृत्ति इंसानों के साथ प्रकृति के लिए भी घातक साबित हुआ। इसका एक स्वरूप घुमंतू समाज और नदियों पर आश्रित समाज के प्रति उनके रवैये से ज़ाहिर होता है। पूर्व औपनिवेशिक काल से लेकर औपनिवेशिक कालीन भारत की पड़ताल किताब के तीसरे एवं चौथे अध्याय में की गई है। किताब में एंथनी एशियावेत्ति (2015) के अध्ययन के आधार पर 1854 के बाद बाढ़ नियंत्रण एवं सूखे के प्रभाव को कम करने के क्रम में गंगा जैसी विशाल नदी को क्रमशः एक मशीन में बदलने का ज़िक्र है। इसी तरह नीलाद्री भट्टाचार्य भी एक नदी को ब्रिटिश साम्राज्य की सेवा में लगा दिए जाने को 'आधुनिकता का वादा और विकास का विरोधाभास' (2018) कहते हैं। क़ानूनों की एक लंबी कड़ी लगातार वनों और नदियों पर क़ब्ज़ा ज़माने में सफल रही। मसलन 1878 का *नॉर्दर्न इंडिया फेरीज़ एक्ट* में नाविकों द्वारा नदी में नाव चलाने की गतिविधि को नियंत्रित किया गया तो *यूनाइटेड प्रोविंसेज मेला एक्ट, 1938* के तहत मेलों को नियंत्रित करने की पहल हुई।

चौथे अध्याय में बदलते पेशे और चुनौतियों के संदर्भ में उत्तर प्रदेश के कुछ ज़िलों जैसे गोरखपुर, अयोध्या एवं कौशांबी ज़िलों से नाविकों द्वारा 2013 और 2019 में संगम के मेले में रोज़गार हेतु आने का ज़िक्र है। यह संभावना अनौपचारिक तंत्रों द्वारा रिश्तेदारियों तथा जातीय संगठनों द्वारा संभव हो पाता है। इस अध्ययन के अनुसार 'पिछले दशकों तक पूर्वी उत्तर प्रदेश में नदियों के किनारे बसे निषादों की जीविका का आधार नदियाँ मुहैया कराती थीं लेकिन अब ऐसा नहीं रह गया है' (पृ. 129)। नदी और निषाद के बदलते संबंधों के दो प्रमुख कारक बदलती तकनीक और आधुनिक शिक्षा हैं। निषादों में शिक्षा का प्रसार अपेक्षाकृत कम हुआ है पर पिछले एक दशक से कमोबेश नई पीढ़ी नाव छोड़ स्कूल कॉलेज की ओर बढ़ रही है। रघुबीर सिंह (डॉक्युमेंटरी फोटोग्राफ़र) ने 1989 में ली अपनी एक तस्वीर का नामकरण कुछ यूँ किया था – 'अ फॉर्मर फिशरमैन, नाउ अ कंस्ट्रक्शन वर्कर, ताजपुर' (एक भूतपूर्व मछुआरा, अब निर्माण कार्य में मज़दूर, ताजपुर)। (पृ. 131)

गंगा के संदर्भ में समुदाय, स्त्री, लोकगीत व लोकमानस

इस किताब में निषादों का चित्रण एक श्रमिक समुदाय के तौर पर किया गया है। लोकगीतों

के माध्यम से विभिन्न आयु वर्ग के स्त्री, पुरुष एवं बच्चों द्वारा आजीविका के लिए मेहनत की बात स्पष्ट की गई है। एक लोकगीत, 'थाकी नहीं हथवा खिंचत पतवरवा/...पेटवा कारन माई पेटवा में दउरी/ पेटवा कारन खेई भार' – मेरे हाथ पतवार खींचते हुए थकते नहीं हैं क्योंकि यदि मेरे हाथ थक गए तो मैं कैसे अपनी आजीविका चला पाऊँगा? (पृ. 198) इसी तरह एक अन्य लोकगीत में निषाद जन अपने सुख-दुःख गंगा नदी के साथ साझा करते हैं – बालू में नाव के फँस जाने पर वे नदी से ही इस कष्ट से उबारने के लिए गुहार लगाते हैं। इन लोकगीतों में बारंबार नदी और निषाद के बीच अभिन्न जुड़ाव का रेखांकन होता है।

लेखक ने एन.फ़ेल्डहॉउस की किताब *वाटर ऐंड वूमनहुड* के मराठी अनुवाद *नदी आणि स्त्रीत्व* (2014) के माध्यम से स्त्री और नदी के बीच पूरकता का संबंध तथा भोजपुरी-अवधी लोकगीतों में नदियों का स्त्री-रूपक चित्रण आदि का (पृ. 194-198) ज़िक्र किया है पर बदलते सामाजिक व राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में निषाद समाज में स्त्रियों की भूमिका और उनकी जीवन स्थिति आदि की पड़ताल नाकाफ़ी है। भारत में यश, समृद्धि, आरोग्य, प्रेम और संतान जैसे मूल्यों को स्त्रियों से जोड़कर देखा गया है। नदी के संदर्भ में ये मूल्य एक साथ देवी और स्त्री दोनों के रूप में देखने को मिलता है। यहाँ राज्य की अवधारणा और आधुनिकता के विमर्श के साथ आए बदलाव और स्त्रियों द्वारा नदी के साथ अपने बदलते रिश्ते को देखना भी महत्त्वपूर्ण होगा। क्या उनके मन और जीवन में नदी की छवि आज वही है जो उनकी नानी-दादी और माँ की पीढ़ी तक थी?

कुबेरनाथ राय की किताब *निषाद बाँसुरी* में निषादों से बातचीत, उनकी जीवन शैली और विश्वास को शास्त्र, लोक और मानव विज्ञान के संदर्भ में परखने की कोशिश की गई है। 1990 के दशक से इस लेख ने निषादों को बहुत बल दिया है क्योंकि इसमें भारतीय धरती के आदि मालिक निषाद को बताया गया है। साथ ही, भारतीय भाषाओं की मूल संज्ञाएँ, भारतीय कृषि के मूल और आदिम तरीक़े और भारतीय मन के आदिम संस्कार उन्हीं की देन हैं। इस लेख के संदर्भ में *नदी पुत्र* एक सिद्धांत प्रतिपादित करती है कि 'किस तरह लिखित साहित्य किसी समुदाय की अस्मिता निर्मिति में सहायक होता है, इसके साथ ही वह लोक से सामग्री ग्रहण करता हुआ चलता है'। रमाशंकर यहाँ 'लिखित' और 'मौखिक' की सीमा रेखा धुँधली होने की बात भी लिखते हैं (पृ. 195)। उनका मानना है कि कई बातें जो शास्त्रों और महाकाव्यों में हैं वही अक्षरशः लोक में भी देखने को मिलती है। हालाँकि समाज में व्याप्त विषमताओं को – चाहे वो जाति के नाम पर हो या लिंग के – लगभग स्वाभाविक रूप में स्वीकार कर लिया जाना भी 'लोक' का ही एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

लेखक राज्य के साथ समाज के सामंजस्य को विशेष महत्त्व देते हैं। इस संदर्भ में, किताब में अनुपम मिश्र और एलिनोर ओस्ट्रोम[4] के लेखों में प्रयुक्त 'स्वामित्व विसर्जन' की

[4] अनुपम मिश्र, गांधीवादी पर्यावरणविद अपनी किताब *आज भी खरे हैं तालाब* (1995) के लिए दुनिया भर में मशहूर हैं. भारत की प्राचीन जल परंपरा को समझने के लिए उनका टेडटॉक (2009) सुना जा सकता है https://www.ted.com/talks/anupam_mishra_the_ancient_ingenuity_of_water_harvesting?language=en . एलिनोर ओस्ट्रोम नोबेल विजेता अर्थशास्त्री हैं जिन्होंने *गवर्निंग*

अवधारणा का प्रयोग किया जाना प्रासंगिक है। यह निश्चित ही एक नए तरह के समाज की कल्पना के क़रीब जाने जैसा है। जहाँ अनुपम मिश्र भारत के प्राचीन समुदायों के संदर्भ में मिल्कियत मिटाने के संदर्भ में इसका प्रयोग करते हैं वहीं ओस्ट्रोम ने कनाडा के न्यू फ़ाउंडलैंड और नोवा स्काटिया के तट पर बसे मछुआरों के द्वारा सामुदायिक रूप से मत्स्य प्रबंधन के बारे में बताती हैं (पृ. 132)। मुझे लगता है कि दो बिल्कुल अलग विषय में अपनी दक्षता के संदर्भ से – समय और स्थान के परिप्रेक्ष्य में पूरब और पश्चिम के विद्वानों द्वारा पुराने और नए समय के लिए कमोबेश एक जैसी बात लिखना हमें यह सोचने को मजबूर करता है कि किस तरह आचार, विचार, व्यवहार और चिंतन प्रणाली से समस्त विश्व में एक तरह की साम्यता है।

हाशिए की राजनीति के बदलते समीकरण

नदी पुत्र के लिए कुबेरनाथ राय की किताब *निषाद बाँसुरी* एक प्रस्थान बिंदु की तरह है। जहाँ राय ने अपना लेखन सत्तर के दशक में किया और नब्बे के दशक से निषाद समुदाय ने अस्मिता की राजनीति को लेकर एकजुट होना शुरू किया, वहीं 2013 में भगवान दास कहार लिखते हैं कि 'कहते हैं जब पृथु को राजा बनाने के बाद देश निकाला दिया गया तो वह pμ में अपने ननिहाल गया। और वहीं निषाद गुहराज कहलाया। इसी ने गंगा पार करने के लिए श्रीराम की सहायता की थी। जलवंशीय केवट, कहार, गौड़, मछुआरा, भोई, धीवर, मल्लाह, कोली, कश्यप, धुरिया, बाथम, नदी-तालाबों के जल से ककड़ी, सिंघाड़ा उत्पादन करने वाली विविध जातियाँ, वन, उपवन में बसने वाली भील, शबर, नाग जैसी अनेक श्रम परायण जातियों का वंशकर्ता यही निषाद है' (पृ. 204-205)। उन्होंने यह लेख 'निषाद ज्योति पत्रिका' में लिखी है और ऐसा लगता है इस दावे में प्रामाणिकता का भाव शायद समय के साथ ही मज़बूत हो पाया है। यह कहना शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी कि समय के साथ कोई समुदाय अपने को मज़बूती से खड़ा कर ना केवल राजनीतिक हिस्सेदारी ढूँढता है बल्कि अपने इतिहास को भी पुनः लिखकर अपने पक्ष में करने का प्रयास भी करता है, जैसा कि हमें इस किताब में भी देखने को मिलता है।

किताब का अंतिम लेख 'समुदाय, संघर्ष और राजनीति' लेखक के बौद्धिक पक्ष को स्पष्ट करता है जहाँ लेखक बखूबी कहते हैं कि 'समुदाय द्वारा नदियों को बचाना इतना आसान काम नहीं है। इसे किसी क़ानून से नहीं बचाया जा सकता है और ना ही स्वच्छ किया जा सकता है' (पृ. 211)। इस क्रम में वे समाज और प्रतीक के एक दोमुँही रचनात्मक प्रक्रिया की बात करते हैं। अर्जुन अप्पादुरई (1997) कहते हैं, 'आकार और प्रसार में कितना ही छोटा समुदाय क्यों ना हो, वह किसी स्थान और समय से जुड़कर नैतिक व्यवस्थाओं, जीवन-दृष्टि और अपनी संस्कृति से परिचालित होता है। इसे लेखक उत्तर भारत की नदियों के किनारे बसे समुदाय से जोड़कर देखते हैं – किस तरह उनका जीवन कई प्रतीकों से जुड़ा है। वे आगे लिखते हैं

द *कॉमन्स* (1990) नामक किताब लिखी है.

कि 'नदियों को प्रदूषित करने में जो योगदान शहरी भारत का है, वह ग्रामीण भारत का नहीं है। नदी के प्रति एक पर्यटक और उससे रोजी-रोटी चलाने वाले निषाद समुदाय के लोगों के बोध में अंतर होता है' (पृ. 212)। प्रदूषण का मामला अब इतना गंभीर हो चुका है कि गंगा जो एक समय में ख़ुद को स्वच्छ रखने की क्षमता के लिए जानी जाती थी, अब अपनी यह क्षमता और आंतरिक गतिकी लगभग खोने के कगार पर है।

भारत में सत्तर के दशक से शुरू हुए वैचारिक विमर्श से बढ़ते हुए चिपको और नर्मदा जैसे आंदोलनों द्वारा समाज में पर्यावरण की समझ में एक गहराई आई है। पिछले दशक में उड़ीसा में हुए नियामगिरि संघर्ष तथा उत्तराखंड उच्च न्यायालय द्वारा गंगा और यमुना नदी को 'लीगल एंटिटी' (क़ानूनी निकाय) का दर्जा देना, नए विमर्शों को जन्म देता है। प्राकृतिक संसाधनों के स्वामित्व को लेकर विश्व भर में चल रहे समकालीन बहस को देखें तो तीन प्रमुख दावेदार – राज्य, बाज़ार/व्यक्ति[5] और समुदाय अपनी अपनी दावेदारी पेश करते हैं। मुझे लगता है कि इस किताब ने अलग-अलग तरह से समुदाय की अवधारणा पर विशेष बल देने के क्रम में निश्चय ही परोक्ष रूप से नदी को साझी संपत्ति के तौर पर लिया है। हालाँकि आधुनिकता के साथ जहाँ एक तरफ़ नदियों पर राज्य के स्वामित्व की बात आती है वहीं दूसरी तरफ़ न्यायिक अवधारणा हमें अधिकारों की व्यक्तिवादी संकल्पना अपनाने के लिए बाध्य करता है। इन ज़रूरी मुद्दों की जटिलताओं और परस्परव्यापी रिश्तों से उपजे सवालों के न्यायोचित उत्तर दे पाने में यह किताब असमर्थ जान पड़ती है। किस तरह व्यक्ति और समुदाय के बीच या फिर बाज़ार, राज्य द्वारा स्वामित्व और सामूहिक स्वामित्व के बीच सामंजस्य बिठाया जाए, ये सवालात बढ़ते समय के साथ और अधिक मुश्किल होते जा रहे हैं।

निष्कर्ष

हाशिए के समाज का जीवन ग़रीबी और समस्याओं से घिरे होने के बावजूद राजनीति में अपने दख़ल को लेकर किस तरह लगातार सचेत हो रहा है, इसे दिखा पाने में लेखक काफ़ी हद तक सफल हैं। लेखक की निषाद समाज के साथ हुई बातचीत के अनेकानेक प्रसंग इन घटनाओं को पाठक के अपने आसपास घटित हो रहे होने का भान देता है। कई मायनों में, इस किताब को पढ़ना एक नई दुनिया से रू-ब-रू होने जैसा है जिसमें संदर्भों के माध्यम से केवल तथ्यों को रखने की बजाय समय-समय पर नए ढंग से सोचने सीखने का निमंत्रण भी है। इतिहास अध्ययन और लेखन के केंद्र में नदी और उसके रहने वाले निषाद समुदाय का जीवंत विवरण प्रस्तुत किया गया है। अंत की ओर जाते हुए किताब अपने में अधिक से अधिक विषयों को समेटने की कोशिश जान पड़ती है मसलन हाल में चर्चित शब्द इकोलॉजिकल रिफ़्यूजी या पारिस्थितिकीय शरणार्थी, पारिस्थितिकीय क्षरण, डी. आर. नागराज द्वारा प्रयुक्त अवधारणा 'टेक्नोसाइड', बालू खनन का मुद्दा, नदियों में क्रूज चलाने की योजना, इत्यादि। इन सब पर थोड़ी और विस्तार से

[5] ग़ौरतलब है कि बाज़ार भी संपत्ति के निजी स्वामित्व का समर्थन करता है जो व्यक्तिवादी सोच पर आधारित है.

चर्चा किताब को और विषय विस्तार देने में मदद करती।

किताब में बेहद स्पष्ट भाषा का प्रयोग हुआ है और शोधपरक लेखन में कहानियों, लोककथाएँ, लोकगीतों और रूपकों के प्रयोग से यह सहजग्राह्य और लोकोन्मुखी है। कुछेक जगहों पर भूल सुधार की गुंजाइश है, मसलन अध्याय चार में नीलाद्री भट्टाचार्य का संदर्भ 2018 दिया गया है जबकि पुस्तक के अंत में संदर्भ की पूरी जानकारी में इसका साल 2019 अंकित है। इसी तरह गंगा मुक्ति आंदोलन के किताब में हुए ज़िक्र और अनुक्रमणिका में उनकी पृष्ठ संख्याओं का उद्धरण मेल नहीं खाते हैं। उम्मीद है अगले संस्करण में ये भूल सुधार ली जाएगी। यह किताब आगामी अंतरविषयी शोधों के लिए प्रारूप के तौर पर महत्त्वपूर्ण है। साथ ही यह कई नए शोधों को ख़ासकर निषाद समुदाय की अगली पीढ़ी द्वारा अपना इतिहास ख़ुद लिखने के लिए प्रेरित करने का भी माद्दा रखती है। किताब के अंत में आठ पृष्ठ का उपसंहार भविष्य के शोध के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को उजागर करता है, जैसे पाठ आधारित, अभिलेखागार आधारित और समाज आधारित शोध समग्र बनें न कि तीन अलग रास्तों पर चलता हुआ लगे। इसी तरह पाठ और वास्तविकता (टेक्स्ट और रियलिटी) के अंतर्संबंधों को समझने पर भी बल दिया गया है – यह संभव है कि ये दोनों कभी विरोधाभासी हों और कभी पूरक।

संदर्भ

अनुपम मिश्र (1995), *आज भी खरे हैं तालाब*, गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली.

_______ (2009), *द एन्सिएंट इन्जेनुइटी ऑफ़ वाटर हार्वेस्टिंग*, https://www.ted.com/talks/anupam_mishra_the_ancient_ingenuity_of_water_harvesting?language=en_

अप्पादुरई, अर्जुन (1997), मॉडर्निटी ऐट लार्ज : कल्चरल डायमेंशन ऑफ़ ग्लोबलाइज़ेशन, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता.

ऐन. फ़ेल्डहॉउस (2014), *नदी आणि स्त्रीत्व*, (अनु.) विजया देव, पुणे, पद्मगन्धा प्रकाशन.

एंथनी एशियावेत्ति (2015), *गंगेज वाटर मशीन : डिजाईनिंग न्यू इंडिया'ज एंसियेंट रिवर*, सैन फ्रांसिस्को : अप्लाइड रिसर्च ऐंड डिज़ाइन.

एलिनोर ओस्ट्रोम (1990), *गवर्निंग द कॉमन्स : द एवोलूशन ऑफ़ इंस्टिट्यूशंस फॉर कलेक्टिव ऐक्शन*, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, न्यू यॉर्क.

कुबेरनाथ राय (2019), *निषाद बांसुरी,* प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता.

जे. सुशील (2022), 'एंथ्रोपोसीन का विचार', *सदानीरा*, अंक 27, वर्ष 9, एंथ्रोपोसीन अंक.

नीलाद्री भट्टाचार्य (2018), *द ग्रेट अग्रेरियन कॉन्क्वेस्ट : द कोलोनियल रीशेपिंग ऑफ़ अ रूरल वर्ल्ड*, रानीखेत : परमानेंट ब्लैक.

भगवान दास कहार (2013), *पुरानोक्ति निषाद उत्पत्ति*, निषाद ज्योति, अक्टूबर.

मणीन्द्र नाथ ठाकुर (2022), *ज्ञान की राजनीति : समाज अध्ययन और भारतीय चिंतन*, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली.

मार्क ब्लॉक (1954), *हिस्टोरियंस क्राफ़्ट,* (अनु.) पीटर पुटनाम, न्यू यॉर्क : मैनचेस्टर युनिवर्सिटी प्रेस.